बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 36

संघवाद का महत्त्व

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के गवर्नर शक्तिकांत दास ने इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि विभिन्न वित्त आयोगों की अनुशंसाएं एक दूसरे से असंगत रही हैं। दास 15वें वित्त आयोग के सदस्य रह चुके हैं और वह केंद्रीय वित्त मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी भी रहे हैं। उन्होंने दलील दी है कि अतीत में विभिन्न वित्त आयोगों ने राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान और कर हस्तांतरण के लिए अलग-अलग तरीके अपनाए। उनके मुताबिक इसकी वजह से दिक्कत पैदा हुई क्योंकि इसमें निरंतरता की आवश्यकता थी। शायद इसी दिक्कत को दूर करने के लिए उन्होंने मौजूदा व्यवस्था के उलट स्थायी वित्त आयोग की स्थापना की वकालत की है। मौजूदा व्यवस्था में हर पांच साल में एक बार वित्त आयोग गठित किया जाता है। अब यह आवश्यक हो चला है क्योंकि वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) लागू हो चुका है और जीएसटी परिषद कर संग्रह में सुधार पर ध्यान केंद्रित कर सकती है। इस बीच वित्त आयोग अन्य सुधारों पर ध्यान दे सकता है।

दास के अतीत को देखते हुए और फिलहाल वह जिस पद पर हैं उसके मद्देनजर उनके सुझावों को समुचित तवज्जो दी जानी चाहिए। बहरहाल, वित्त आयोगों से उनकी अपेक्षाएं गलत प्रतीत होती हैं और उन्होंने इन आयोगों की अनुशंसाओं को निरंतर अद्यतन किए जाने की आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखा। वित्त आयोग राजकोषीय परिदृश्य का सर्वेक्षण करते हैं और उसके साथ संघवाद की स्थिति को परखते हुए ऐसी अनुशंसाएं करते हैं जिनका राजनीतिक वर्ग को ध्यान रखना होता है। यह दास के सुझावों से एकदम अलग है लेकिन यह एक अहम जरूरत बनी हुई है। दास विभिन्न वित्त आयोगों की सिफारिशों में निरंतरता की कमी को लेकर चिंतित हो सकते हैं लेकिन इस दौरान वह इस तथ्य की अनेदखी कर रहे हैं कि हाल के आयोगों की अनुशंसाओं में एक व्यापक रुझान राज्यों के कर हस्तांतरण में इजाफे का रहा है। यह बात अब स्थापित हो चुकी है और भविष्य के आयोग इसे आगे लेकर जाएंगे।

दिक्कत यह है कि ऐसी अनुशंसाओं को लेकर विभिन्न सरकारों ने सही रवैया नहीं अपनाया। उदाहरण के लिए मौजूदा सरकार ने चौदहवें वित्त आयोग के उस निर्णय पर समुचित कदम नहीं उठाया जिसके तहत उसने राज्यों के साथ साझा होने वाले कर का अनुपात 32 प्रतिशत से बढ़ाकर 42 प्रतिशत करने की बात कही थी। उस बढ़े हुए आवंटन को उपकरों के जरिये तथा केंद्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के आवंटन में भारी कमी के जरिये वापस ले लिया गया। दास अपने पूर्ववर्ती गवर्नरों में से एक वाई वी रेड्डी की पुस्तक के लोकार्पण के अवसर पर बोल रहे थे। इस अवसर पर रेड्डी ने कहा कि जहां विभिन्न वित्त आयोगों ने अलग-अलग अनुशंसाएं की हैं वहीं कभी भी किसी एक अनुशंसा का प्रभाव किसी खास राज्य पर 10 फीसदी से अधिक नहीं हुआ। दूसरे शब्दों में कहें तो आयोगों की अनिरंतरता से जुड़ी आशंका को बेवजह तूल दी जा रही है।

वित्त आयोग देश के संवैधानिक ढांचे का अहम हिस्सा हैं। उनकी बदौलत संघवाद से जुड़े प्रश्नों को लेकर देश का रुख निरंतर अद्यतन होता रहता है। कुछ विशिष्ट नियमों के साथ स्थायी वित्त आयोग का गठन इस प्रयास पर पानी फेर देगा और देश के संघीय ढांचे को भी नुकसान पहुंचाएगा। इस चर्चा पर राज्यों की भी निगाह है। केंद्र ने पहले ही 15वें वित्त आयोग की संदर्भ शर्तों में कुछ विवादास्पद बातें जोड़कर अनपेक्षित दबाव बना दिया है। दक्षिण भारत के राज्यों को लग रहा है कि इससे वे अनावश्यक रूप से दंडित होंगे। वित्त आयोगों का सम्मान किया जाना चाहिए, उन्हें असुविधा नहीं समझा जाना चाहिए।

विनय सिन्हा

रीपो दर से जमा ब्याज दरों का जुड़ाव छोटा सा कदम

भारतीय रिजर्व बैंक की तरफ से नीतिगत दरों में कमी किए जाने के बावजूद बैंक ग्राहकों को उसका लाभ हस्तांतरित नहीं करते हैं। इस पर सवाल उठा रहे हैं **देवाशिष बसु**

भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) ने गत 8 मार्च को यह ऐलान किया कि आगामी 1 मई से बचत खातों में जमा और कम अवधि वाले 1 लाख रुपये से अधिक के कर्जों पर लगने वाली ब्याज दर को रीपो दर के आधार पर तय किया जाएगा। भारतीय रिजर्व बैंक रीपो दर पर ही नकदी की कमी से जूझ रहे बैंकों को कर्ज देता है।

इस कदम की लगभग हरेक टिप्पणीकार ने प्रशंसा की है। रिजर्व बैंक ने गत दिसंबर में ही बैंकों से कहा था कि आवासीय ऋण जैसे परिवर्तनीय (फ्लोटिंग) दरों वाले सभी नए कर्जों को 1 अप्रैल, 2019 से एक बाहरी बेंचमार्क से जोड़ दें। ऐसे में कोई भी सजग पर्यवेक्षक फौरन इस बात को समझ लेगा कि आरबीआई क्या चाहता था और एसबीआई ने अब तक क्या किया है?

एसबीआई ने जमाओं पर ब्याज दरों को रीपो दर से जोड़ने का फैसला किया है। इसका मतलब है कि रीपो दर के घटने-बढ़ने पर जमाओं की ब्याज दर में भी बदलाव आ जाएगा। लेकिन उसने कारोबारियों को दिए जाने वाले लंबी अवधि के कर्ज और आवासीय ऋण, व्यक्तिगत ऋण और वाहन ऋण पर ब्याज दरों को रीपो दर से जोड़ने की घोषणा नहीं की है। इसका मतलब है कि बैंकों की मनमानी के शिकार कर्जदारों को लूटने का सिलसिला जारी रहेगा।

ध्यान रखें कि ऊर्जित पटेल के गवर्नर रहते समय आरबीआई ने कहा था कि बैंकों को अपने कर्ज देने की दरों को बाहरी बेंचमार्क से जोड़ना होगा। लेकिन मौजूदा गवर्नर शक्ति कांत दास के समय आरबीआई इस दिशा में बहुत तेजी नहीं दिखा रहा है। अब यह लगभग तय लग रहा है कि 1 अप्रैल आकर चला भी जाएगा लेकिन बैंकों पर कोई असर नहीं पड़ेगा। यह आरबीआई की पुरानी नाकामी का ही नया दौर होगा जिसमें आरबीआई की तरफ से दरों में कमी करने के बावजूद बैंक ग्राहकों को उनका लाभ हस्तांतरित नहीं करते हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि एसबीआई का यह कदम लाभ हस्तांतरण में सुधार के आरबीआई के मकसद को पूरा कर पाएगा? इन तथ्यों पर गौर करते हैं:

1. बैंक यह दावा करते रहे हैं कि जमा के बड़ा हिस्सा सावधि के रूप में होने से उनके पास हस्तांतरण की नमनीयता नहीं होती है। बैंकों में जमा राशि का कितना हिस्सा बचत खातों में होता है? एसबीआई के मामले में बचत खातों में जमा राशि का अनुपात करीब 38 फीसदी है। उसमें से भी 20 फीसदी जमा तो 1 लाख रुपये से कम ही है। इसका मतलब है कि 38 फीसदी बचत जमा का 80 फीसदी यानी कुल जमा का 30 फीसदी हिस्सा ही फ्लोटिंग दर के दायरे में आएगा। इस तरह कुल जमा का 70 फीसदी हिस्सा अब भी फिक्स्ड ही रहेगा जिसके चलते बैंकों के लिए सही मायने में फ्लोटिंग दर वाली ब्याज व्यवस्था लागू कर पाना मुश्किल होगा।

2. बैंकों की तरफ से कर्ज दर की लागत (एमसीएलआर) पर इस कदम का क्या असर होगा? इन जमाओं पर ब्याज दर में 25 आधार अंकों की कटौती होने पर भी इस फैसले से बैंकों के एमसीएलआर में केवल 7 आधार अंकों की कमी आएगी। हालांकि यह कदम 'देर आए दुरुस्त आए' की कहावत को चरितार्थ करता है लेकिन यह बहुत छोटा कदम ही है।

3. किसी भी सूरत में एसबीआई का आधा-अधूरा कदम तब तक समूची व्यवस्था के लिए अधिक मायने नहीं रखेगा जब तक कि बाकी बैंक भी एसबीआई का अनुसरण करें। मीडिया रिपोर्ट की मानें तो अधिकांश बैंक इसके लिए तैयार नहीं हैं।

4. एक व्याख्या के मुताबिक, बचत खातों को रीपो दर से जोड़ने के बाद इन जमाओं का कुछ हिस्सा फिक्स्ड डिपॉजिट में तब्दील हो जाएगा। फिर भी, जमाओं का अगर छोटा हिस्सा भी रीपो से जुड़ता है तो हस्तांतरण में और कमी आएगी।

जमा : गलत बोझ

इस पूरी बहस में दो अहम कारकों पर गौर नहीं किया गया। पहला, भले ही बैंक अपनी जवाबदेही नहीं बढ़ने के दावे कर रहे हैं लेकिन असली मुद्दा कुछ और है। हस्तांतरण पर विमर्श में आश्चर्यजनक तौर पर इस बात पर कोई चर्चा नहीं होती है कि बाकी कारक कौन हैं जो इस प्रसार को तय करते हैं। एमसीएलआर के लिए आरबीआई जमा एवं फंड की लागत से इतर तीन अन्य कारकों को भी ध्यान में रखता है। नकद साख अनुपात और सांविधिक तरलता अनुपात पर नकारात्मक लागत, वितरण-अयोग्य मद और नेटवर्थ पर औसत रिटर्न। विश्लेषक भी जमाओं पर अनमनीय लागत को हस्तांतरण पर इकलौते गतिरोध के तौर पर देखते हैं। एमसीएलआर तय करने वाले तीन अन्य कारकों की कोई समीक्षा नहीं हुई है। आरबीआई भी इसी धारणा पर चला है।

दूसरा, सार्वजनिक बैंकों के कर्ज दरों को पूरी तरह फ्लोटिंग नहीं बना पाने की राह में सबसे बड़ी बाधा गैरजिम्मेदार एवं मनमाने ढंग से कर्ज का आवंटन है जिसके चलते फंसे कर्जों का बोझ बढ़ता जाता है। यह समस्या बैंकों को दिवालिया होने के कगार पर पहुंचाती है और फिर उन्हें खुद को जिंदा रखने के लिए सार्वजनिक पूंजी की जरूरत पड़ती है। बिना जवाबदेही वाले बैंकरों ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की कर्ज बांटने की क्षमता कम की है जिससे कर्ज की दरें ऊंची बनी हुई हैं। ब्याज दरों का हस्तांतरण करीब 20 वर्षों से नहीं हो पाया है जिसके लिए काफी हद तक खराब ढंग से बनाई गई नीतियां और कुछ हद तक आरबीआई की लापरवाही भी जिम्मेदार रही हैं। हस्तांतरण बैंकों का मुनाफा कम कर देता है लिहाजा यह उनके लिए चिंता का सबब नहींहोता है।

एसबीआई जमाओं पर ब्याज दर को कभी भी फ्लोटिंग बना सकता था लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। हालांकि अब उसने आरबीआई के निर्देशों के तहत यह काम दबाव में उठाया है। अगर हस्तांतरण को सफल बनाना है तो हमें स्पष्ट दिशानिर्देशों की जरूरत है।

डिजिटल के प्रसार पर टिका मीडिया वृद्धि का भ्रम

मीडिया मंत्र

वनिता कोहली-खांडेकर

क्या केवल कुछ उपभोक्ता ही मायने रखते हैं? यह एक ऐसा सवाल है जो मैं अक्सर शोधकर्ताओं, मीडिया संस्थानों, मार्केटिंग विशेषज्ञों और विश्लेषकों से अक्सर पूछती हूं। मसलन, वर्ष 2014 में 31 फीसदी भारतीय मतदाताओं ने भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को सत्ताधारी दल के तौर पर चुना था। ऐसे में समाचार संस्थानों की 90 फीसदी से भी अधिक तादाद केवल इस 31 फीसदी मतदाताओं से ही संवाद क्यों कर रहे हैं? इसी तरह वर्ष 2018 में 83.6 करोड़ भारतीयों ने टेलीविजन देखा, 38.5 करोड़ लोगों ने अखबार पढ़ा और एक अरब से अधिक लोगों ने सिनेमाघरों के टिकट खरीदे थे लेकिन आज के समय मीडिया के बारे में होने वाली तमाम चर्चाएं और शोध के केंद्र में मुख्यत: डिजिटल पाठक ही होते हैं।

रॉयटर्स पत्रकारिता अध्ययन संस्थान (आरआईएसजे) की भारत में डिजिटल न्यूज की स्थिति को लेकर पिछले हफ्ते एक रिपोर्ट जारी की गई। इसके मुताबिक 35 साल से कम उम्र के उपभोक्ताओं के बीच खबरें जानने के लिए ऑनलाइन समाचार मंच (56 फीसदी) और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म (28 फीसदी) ने प्रिंट (16 फीसदी) को काफी पीछे छोड़ दिया है। यह अलग बात है कि प्रिंट की तुलना में ऑनलाइन प्लेटफॉर्म से मिलने वाली खबरों के स्रोत बहुत भरोसेमंद नहीं होते हैं। इनमें से कई पोर्टल तो किस्सागोई की शक्ल में साक्ष्य रखते हैं। जनवरी की शुरुआत में यूगव ने एक ऑनलाइन प्रश्नावली का इस्तेमाल कर एक सर्वे किया था। हालांकि उसके सैंपल का आकार नहीं बताया गया। उस सर्वे रिपोर्ट के मुताबिक, 'इसका सैंपल भारत में अंग्रेजी बोलने वाली जनसंख्या और इंटरनेट उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस वजह से यह मुख्यत: पुरुष आबादी, संपन्न और शिक्षित लोगों की राय ही दिखाता है। एक ऑनलाइन सर्वे के तौर पर इसके नतीजे उन लोगों की आदतों के बारे में नहीं बताएंगे जो ऑनलाइन माध्यम का इस्तेमाल बहुत कम करते हैं।' ऐसे लोगों में बुजुर्ग, कम साधन-संपन्न और सीमित औपचारिक शिक्षा वाले लोग आते हैं।

साफ तौर पर कहें तो भले ही इसका नाम 'डिजिटल न्यूज रिपोर्ट' हो लेकिन आरआईएसजे ने इसमें हर जगह भाषा और इंटरनेट पहुंच का सवाल बरकरार रखा है। यह एक ईमानदार प्रयास है। इसी तरह फिक्की-फ्रेम्स की पिछली दो वर्षों की रिपोर्ट भी ऑनलाइन मीडिया को लेकर वही आख्यान पेश करती हैं कि यह टीवी, प्रिंट और दूसरे मीडिया माध्यमों को खत्म करने वाली सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान ताकत बनती जा रही है। हालांकि ऐसा है नहीं।

कॉमस्कोर कहता है कि भारत के 48 करोड़ ब्रॉडबैंड उपभोक्ताओं में से 27.9 करोड़ लोग खबरों और सूचनाओं के लिए ऑनलाइन मंचों का इस्तेमाल करते हैं। हालांकि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसे अखबार को अगर कोई व्यक्ति ऑनलाइन एवं ऑफलाइन दोनों तरह पढ़ता है तो आंकड़ों में दोहराव हो सकता है और कॉमस्कोर जैसी एजेंसियों ने काफी हद तक इस आंकड़े को दुरूस्त भी किया है। अभी तक अंग्रेजी को छोड़कर बाकी भाषाओं के पाठकों की संख्या पर इस माध्यम का खास असर नहीं पड़ा है।

टीवी भी इसी तरह के नकारात्मक विमर्श का सामना कर रहा है। लगता है कि नेटफ्लिक्स, एमएक्स प्लेयर और वूट जैसे ओटीटी प्लेटफॉर्म टीवी को खत्म कर देंगे। जबकि सच यह है कि भारतीय रोजाना 3.45 घंटे टीवी देख रहे हैं और हर साल यह समय बढ़ता जा रहा है। इसकी तुलना में स्ट्रीमिंग वीडियो देखने पर वे एक दिन में 50 मिनट व्यतीत करते हैं। फिल्म उद्योग के लिए वर्ष 2018 बेहतरीन साल रहा है और टिकटों की बिक्री में भी बढ़त देखी गई है।

मुद्दा यह है कि सभी तरह के मीडिया माध्यम एक साथ बने हुए हैं। अमेरिका को ही देखिए। वहां पर 1940 के दशक में यह आशंका जताई जाने लगी थी कि विनाइल रिकॉर्ड्स आने से लाइव कंसर्ट कारोबार ही खत्म हो जाएगा। परेशान संगीतकारों ने हड़ताल तक कर दी थी। इसी तरह वर्ष 1970 के दौर में एनालॉग टेप, 1980 में ब्लैंक सीडी, 1990 में नैपस्टर जैसी संगीत कम्प्रेशन तकनीक के खिलाफ आवाज बुलंद होती रही। लाइव संगीत का दौर फिर से लौट आया और डिजिटल तकनीक आने के बाद संगीत उद्योग के दिन सुनहरे हो गए हैं। रेडियो और पॉडकास्टिंग भी जारी है। जब भी कोई नई तकनीक आती है तो नई तरह से चीजें घटती हैं और फिर सह-अस्तित्व के हालात बन जाते हैं। आने वाले कल को अगर डिजिटल से इतर भी कोई बेहतर चीज आती है तो वह भी खुद की जगह बना लेगी।

अमेरिका में अखबार, रेडियो, टीवी- हरेक मीडिया का अपना दौर रहा, वह परिपक्व हुआ, उपभोक्ताओं ने उसका इस्तेमाल किया और फिर कुछ समय बाद नई तकनीक की ओर बढ़ गए। तकनीकी तौर पर 1980 के दशक के मध्य तक भारतीय मीडिया एक बंद बाजार ही था। उस समय पाइरेटेड वीडियो फिल्में दिखाने वाले केबल चैनल पहली बार सामने आए थे। सही मायने में भारतीय मीडिया बाजार 1991 में खुला जब निजी सैटेलाइट चैनल आए और आर्थिक उदारीकरण की भी शुरुआत हुई। लेकिन 1990 के दशक के अंतिम वर्षों में निजी टीवी चैनल, रेडियो और समाचारपत्र हरेक मीडिया माध्यम का जबरदस्त विस्तार होने लगा। यह बताता है कि प्रिंट एवं टीवी उपभोग में वृद्धि क्यों जारी है?

पूरे भारत में ऐसे बहुतेरे लोग हैं जो अखबार पढ़ते हैं, फिल्में एवं टीवी देखते हैं और तमिल, मलयालम या मराठी भाषा में रेडियो कार्यक्रम सुनते हैं लेकिन उनमें से कई लोग ऑनलाइन मंच का इस्तेमाल नहीं करते हैं। यह समूह डिजिटल को भी पूरे उत्साह के साथ गले लगा रहा है। जहां तक राजस्व, मुनाफा और बाकी सभी मानकों का सवाल है तो डिजिटल मीडिया अब भी रफ्तार पकड़ रहा है। अगर यह प्रिंट या टीवी या किसी अन्य माध्यम को पीछे भी छोड़ देता है तो भी साथ में वजूद बना रहेगा। क्या हम इस बारे में एक संतुलित एवं सच्चाई के करीब नजरिया अपना सकते हैं?

कानाफूसी

कीर्ति की मुश्किल

ऐसा लग रहा है कि आने वाले दिनों में बिहार में कांग्रेस और राष्ट्रीय जनता दल (राजद) गठबंधन को और अधिक मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। इस बार इस नाराजगी के केंद्र में कीर्ति झा आजाद हैं। दरअसल दोनों दल इस सहमति पर पहुंचे थे कि अलीनगर के विधायक अब्दुल बारी सिद्दीकी दरभंगा लोकसभा सीट से चुनाव मैदान में उतरेंगे। इस बात से दो बार चुनाव जीत चुके मौजूदा सांसद कीर्ति झा आजाद नाराज हो गए हैं। आजाद 2014 में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के टिकट पर चुनाव जीतने में कामयाब रहे थे, उन्होंने हाल ही में भाजपा छोड़कर कांग्रेस का दामन थाम लिया। कांग्रेस का शीर्ष नेतृत्व आजाद के लिए सीट का बंदोबस्त करने में लगा हुआ है। ऐसा लगता नहीं कि उन्हें पास की मधुबनी या झांझरपुर सीट से उम्मीदवार बनाया जाएगा क्योंकि राजद ने इन दोनों जगहों से उनकी उम्मीदवारी को खारिज कर दिया है।

घोषणाओं का मौसम

यह चुनावों का मौसम है और राजनीतिक दल लगातार ऐसी घोषणाएं कर रहे हैं जिनके जरिये जनता को कुछ न कुछ दिया जा रहा है। अब केरल की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) सरकार ने कहा है कि वह किसानों को ऐसा न्यूनतम समर्थन मूल्य देगी जो उनकी उत्पादन लागत से कम से कम 50 फीसदी अधिक होगा। इतना ही नहीं सरकार ने 18,000 रुपये न्यूनतम वेतन और 6,000 रुपये न्यूनतम कल्याण पेंशन भी प्रदान की जाएगी। केरल के वित्त मंत्री थॉमस आइजक ने कहा कि उनकी पार्टी जिस पैकेज का प्रस्ताव रख रही है वह कांग्रेस की आय समर्थन योजना से बेहतर है क्योंकि माकपा ने संसाधनों के समुचित आवंटन की योजना भी तैयार की है। इसमें अमीरों और कारोबारियों के मुनाफे पर कर बढ़ाना, संपत्ति कर बहाल करना और विरासती कर लागू करने के साथ-साथ दीर्घावधि का पूंजीगत लाभ कर लागू करना भी शामिल है।

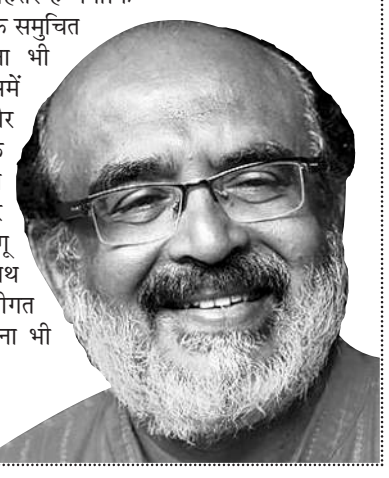

आपका पक्ष

नेताओं के वादों पर हो आयोग की नजर

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने कहा है कि अगर लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की जीत होती है तो 25 करोड़ गरीब लोगों को हर साल न्यूनतम आय योजना के तहत 72,000 रुपये दिए जाएंगे। इस योजना के तहत किसी गरीब परिवार की मासिक आय 12,000 रुपये तय की गई है। अगर किसी परिवार को 12,000 रुपये से कम मिलते हैं तो उसकी पूर्ति की जाएगी। अर्थात अगर किसी गरीब व्यक्ति की मासिक आय 6,000 रुपये है तो उसे और 6,000 रुपये दिए जाएंगे। किसी व्यक्ति की कितनी आय है यह कहना कठिन है कि गरीब परिवार की मासिक आय का कैसे पता लगाया जाएगा। सवाल यह उठता है कि न्यूनतम आय योजना में खर्च होने वाली राशि कहां से आएगी। इस योजना से करीब 3.5 लाख करोड़ रुपये का अतिरिक्त खर्च बढ़े गा। देश की अर्थव्यवस्था पहले से ही चरमराई हुई है तथा राजस्व घाटा

कांग्रेस की गरीब परिवारों के लिए न्यूनतम आय योजना पर किए जा रहे हैं सवाल

बढ़ रहा है। ऐसे में सरकारी खजाने में 3.5 करोड़ रुपये का बोझ डालना किसी भी सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती होगी। अगर इस योजना को लागू किया जाता है तो अन्य योजनाओं की बलि चढ़ जाएगी। देश में फिलहाल न्यूनतम मजदूरी दर तय है। इसके तहत किसी मजदूर को निर्धारित मजदूरी मिलती है। लेकिन मजदूरों को उनकी मेहनत की कमाई मिलती है। ऐसे में अलग से पैसे देने को खैरात ही कहा जाएगा। बहरहाल क्या ऐसी घोषणाएं आचार संहिता का उल्लंघन नहीं है कि कोई नेता यह वादा करता है कि चुनाव जीतने के बाद लोगों को रुपये दिए जाएंगे? इसे शब्दों का फेर कहा जा सकता है। चुनाव आयोग को ऐसी घोषणाओं को संज्ञान में लेना चाहिए तथा आदर्श आचार संहिता के तहत कार्रवाई करनी चाहिए।

मोहित कुमार, नई दिल्ली

चुनाव में गुम होते दलितों के मुद्दे

लोकसभा चुनाव करीब हैं और सभी राजनीतिक दल जोरशोर से चुनाव की तैयारी कर रहे हैं। लेकिन इस बार चुनाव में दलितों के मुद्दे गायब हैं। वर्तमान में चुनावी रणभूमि केवल एक विचारधारा बनाम दूसरी विचारधारा का बनकर रह गई है। चुनावी मुद्दों में दलित परिवार के बच्चों की शिक्षा, दलित व्यक्ति का संसद में प्रतिनिधित्व आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। कई नेता तथा दल दलित राजनीति कर सत्ता पाने में कामयाब हुए हैं। कई नेता दलितों को वोट बैंक समझते हैं तथा इसका बखूबी इस्तेमाल कर कुर्सी पा जाते हैं। शायद ऐसे नेता आगे भी दलित मुद्दे को भुनाते रहेंगे लेकिन दलितों की स्थिति में आज भी कोई खास सुधार नहीं हुआ है।

चंद्र प्रकाश शर्मा, नई दिल्ली

पॉलीथिन की थैलियों पर लगे लगाम

देश के तमाम छोटे-बड़े शहरों में हर रोज पॉलीथिन की लाखों थैलियां कचरे में पहुंचती हैं और जैविक रूप से नष्ट न होने की वजह से पर्यावरण को दूषित करती रहती हैं। हल्की होने के कारण ये थैलियां हवा में उड़कर दूर-दूर तक पहुंच जाती है। इनकी वजह से सीवर और नालियां भी बंद हो जाती हैं। इसलिए हर तरह की पॉलीथिन की थैलियों पर पूर्णत: रोक लगाई जानी चाहिए।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।